आर्थिक कारक
[ECONOMIC FACTORS]

आर्थिक कारकों की भी सामाजिक परिवर्तन लाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। जैसे-जैसे आर्थिक जगत में विकास होता है तथा नवीन आर्थिक व्यवस्था का प्रादुर्भाव होता है, वैसे-वैसे समाज में अनेक परिवर्तन होने प्रारम्भ हो जाते हैं। **मार्क्स** (Marx) तो आर्थिक कारक को समाज में परिवर्तन का केन्द्रीय एवं निर्णायक कारक मानते हैं। उनके अनुसार आर्थिक ढाँचे में परिवर्तन से पूरे समाज में परिवर्तन होते हैं। आज समाज में आर्थिक क्रियाएँ इतना महत्त्वपूर्ण स्थान पाती जा रही हैं कि हमारी सभी सामाजिक-सांस्कृतिक क्रियाएँ उनके चारों ओर घूमती हुई दृष्टिगोचर होती हैं। राजनीतिक क्रियाएँ भी काफी सीमा तक आर्थिक कारकों से प्रभावित होती हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि हमारी प्रत्येक क्रिया के पीछे आर्थिक स्वार्थ निहित होता है। आज यदि किसी व्यक्ति की आर्थिक स्थिति में कोई परिवर्तन होता है तो अन्य स्थितियाँ स्वयं बदल जाती हैं।

वस्तुत: मानव के जन्म के साथ ही उसे अनेक आवश्यकताएँ घेर लेती हैं। इनमें से कुछ आवश्यकताएँ उसकी प्राथमिक आवश्यकताएँ हैं; जैसे कि भोजन, वस्त्र तथा निवास की; और इन्हीं आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए समाज में आर्थिक संस्थाओं का जन्म होता है। मनुष्य की आर्थिक क्रियाएँ उत्पादन, विनिमय, वितरण से सम्बन्धित होती हैं। आर्थिक संस्थाओं का प्रत्यक्ष सम्बन्ध मानवीय आवश्यकताओं से होता है। आर्थिक संस्थाएँ मनुष्य के जीवन को व्यवस्थित करती हैं। यदि मानवीय आवश्यकताएँ; विशेषकर भौतिक आवश्यकताएँ बिना नियमों के संघर्ष से प्राप्त होने की स्थिति में आ जाएँ तो सामाजिक संरचना ही नष्ट हो जाएगी। अर्थशास्त्रियों का मत है कि आर्थिक संस्थाओं को समाज में केन्द्रीय स्थिति प्राप्त है।

आर्थिक कारकों का अर्थ
(Meaning of Economic Factors)

आर्थिक कारकों का सम्बन्ध आर्थिक संस्थाओं एवं अर्थव्यवस्था से है। आर्थिक संस्थाएँ समाज की अनुकूलन सम्बन्धी समस्याओं से आबद्ध होती हैं। इनमें उन संस्थाओं को सम्मिलित किया जाता है जो समाज में वस्तुओं के उत्पादन एवं वितरण से सम्बन्धित होती हैं। आर्थिक संस्थाओं द्वारा ही जीवन निर्वाह से सम्बन्धित आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। **एण्डरसन** एवं **पार्कर** (Anderson and Parker) के अनुसार, "वस्तुओं के उत्पादन तथा वितरण के माध्यम से आर्थिक संस्थाएँ समाज के अस्तित्व को बनाए रखती हैं। यह कार्य, पूँजी, श्रम, भूमि, कच्चे माल तथा व्यवस्था सम्बन्धी योग्यता के अधिकतम उपयोग द्वारा सम्भव होता है।" आर्थिक संस्थाएँ अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित उत्पादन तथा वितरण के नियमों का विवेचन करती हैं। समाजवाद, पूँजीवाद, साम्यवाद, सामन्तवाद, सम्पत्ति, श्रम-विभजान तथा अनुबन्ध (Contract) इत्यादि प्रमुख आर्थिक संस्थाएँ हैं।

किसी भी समाज की आर्थिक व्यवस्था अथवा अर्थव्यवस्था उस समाज के मनुष्यों के जीविकोपार्जन के साधनों की ओर इंगित करती है। इसमें हम उस समाज के मनुष्यों के उत्पादन, उपभोग, विनिमय आदि के विषय में ज्ञान प्राप्त करते हैं। आर्थिक क्रियाओं के इसी संगठन को अर्थव्यवस्था कहा जाता है। अन्य शब्दों में कहा जा सकता है कि अर्थव्यवस्था का सम्बन्ध उन क्रियाकलापों से है जिनसे लोग अपने सीमित साधनों का आबंटन कर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने का प्रयास करते हैं। अर्थव्यवस्था मानव कार्यकलापों का एक विस्तृत क्षेत्र है जिसका सम्बन्ध साधनों के परिसीमित उपयोग और संगठन से है। प्रत्येक समाज अपनी आवश्यकता की पूर्ति हेतु भौतिक साधनों को नियोजित करता है जिससे उसकी आवश्यकताएँ पूर्ण होती रहें। इसके लिए वह विज्ञान और प्रौद्योगिकी का सहारा लेता है। वह विवेक द्वारा अपनी आवश्यकताओं से तारतम्य स्थापित करने का प्रयास करता है। अर्थव्यवस्था मानव जीवन का आधार है। ऐसा कोई भी समाज नहीं जिसने अर्थव्यवस्था के महत्त्व को स्वीकार न किया हो। मनुष्य की अनन्त आवश्यकताएँ होती हैं। आदिकाल से ही मनुष्य इन अनगिनत आवश्यकताओं से घिरा रहा है।

सामाजिक परिवर्तन में सहायक आर्थिक कारक
(Economic Factors conducive to Social Change)

सामाजिक परिवर्तन लाने में सहायक आर्थिक कारक निम्न प्रकार हैं—

(1) **आर्थिक परिस्थितियाँ एवं सामाजिक संस्थाएँ** (Economic conditions and social institutions)—भारत में संयुक्त परिवार, जाति प्रणाली, ग्राम पंचायतों और अन्य सामाजिक संस्थाओं पर

Scanned with CamScanner

आर्थिक विकास द्वारा उत्पन्न नवीन आर्थिक परिस्थितियों का गहरा प्रभाव पड़ा है। गाँवों का भी प्रौद्योगिकी और आर्थिक कारकों (बड़े-बड़े उद्योग-धन्धों) ने नगरीकरण कर दिया है। गाँवों में रहने वाले लोगों की संख्या बढ़ते शहरीकरण के कारण निरन्तर कम होती जा रही है और इसके परिणामस्वरूप शहरों में भीड़ बढ़कर अनेक समस्याएँ उत्पन्न कर रही हैं। नगरीकरण के कारण संयुक्तता की भावना का ह्रास हुआ है। व्यक्तिवादी विचारधारा पनपी है और त्याग एवं बलिदान की भावना समाप्त होती जा रही है। स्त्रियों की शिक्षा बढ़ने से उनकी आर्थिक स्वतन्त्रता में वृद्धि हुई है।

भौतिकवादी युग में व्यक्तिवादिता के कारण स्त्रियाँ पति और परिवार से पहले की अपेक्षा कहीं अधिक स्वतन्त्र हो गई हैं अत: स्त्रियों की स्थिति परिवर्तित हुई है। वास्तविकता तो यह है कि नौकरी एवं धन पर स्वामित्व ने स्त्रियों की मनोदशा को भी परिवर्तित कर दिया है। न केवल स्त्रियाँ ही बल्कि शहर के नौकरी करने वाले पुरुष भी, पत्नी एवं संयुक्त परिवार के नियन्त्रण से मुक्त, व्यक्तिवादी तथा आत्मकेन्द्रित बनते जा रहे हैं। इस प्रकार, परिवार के मनोविज्ञान, तीज-त्योहार मनाने के ढंग, खान-पान, रहन-सहन के दृष्टिकोण एवं मूल्यों में तीव्र परिवर्तन हुआ है। विधवा विवाह के पक्ष में जनमत का निर्माण हुआ है। जातियों के खाने-पीने एवं विवाह सम्बन्धी बन्धन ढीले पड़े हैं। छूआछूत शहरी औद्योगिक वातावरण में प्रमुख नहीं हो सकती। जाति पंचायतें ह्रासोन्मुख हैं तथा जजमानी प्रथा भी समाप्त-सी हो गयी है। अब लोग परम्परागत सेवा करने वाले नाई, लोहार आदि पर निर्भर नहीं रहते बल्कि काम को महत्त्व देते हैं। इस प्रकार नवीन आर्थिक परिस्थितियों के साथ हमारी संस्थाओं में तीव्र गति से परिवर्तन हुआ है।

(2) आर्थिक परिस्थितियाँ एवं धर्म (Economic conditions and religion)—आज की आर्थिक व्यवस्था ने व्यक्ति के धार्मिक विश्वासों पर आक्रमण किया है। आज धन ही भगवान है। यदि व्यक्ति के पास धन है तो वह गुणवान, कुलीन, अच्छा वक्ता और विद्वान तथा दार्शनिक है। आज भौतिकवादी विचार पनपे हैं। धनी कोई भी अपराध करके धन के बल पर बच सकता है। आज का व्यक्ति धार्मिक विश्वासों को अन्धविश्वास कहकर ठुकरा देता है, वह केवल उन्हीं बातों पर विश्वास करता है जिन्हें वह देखता, छूता और अनुभव करता है। इसलिए वह भगवान के अस्तित्व में सन्देह करता है। धर्म को आज हम वैज्ञानिक एवं सामाजिक प्रगति में बाधक मानते हैं। साम्यवादी तो धर्म को 'अफीम का गोला' कहता है अत: प्राकृतिक शक्तियों में उसकी कोई श्रद्धा नहीं और न वह उससे डरता ही है। लोग स्वर्ग एवं नरक की धारणाओं की व्याख्या भी आर्थिक स्तर पर करते हैं। जिसके पास धन है वह स्वर्गिक आनन्द प्राप्त कर रहे हैं और जो धन के अभाव में जी रहा है वह नरक भोग रहा है। पारलौकिक जीवन से लोगों का विश्वास हटता जा रहा है। इस लौकिक सुख की प्राप्ति ही व्यक्ति का लक्ष्य रह गई है और अन्य सभी भावनाएँ इस भावना से हेय है। आज आर्थिक विकास से सिद्ध हो गया है कि गरीबी परमात्मा का दिया हुआ अभिशाप नहीं है। इस प्रकार, हम कह सकते हैं कि आर्थिक कारकों के आधार पर ही धार्मिक विचारधाराओं में परिवर्तन हुए हैं।

(3) आर्थिक परिस्थितियाँ एवं राजनीतिक संगठन (Economic conditions and political organization)—आर्थिक विकास ने जिन आर्थिक संस्थाओं एवं शक्तियों को जन्म दिया है वे इतनी महत्त्वपूर्ण हैं कि उनसे हमारे राजनीतिक कार्य भी प्रभावित होते हैं। राजनीतिक संगठन आर्थिक संगठन पर निर्भर करता है। देश की राजनीतिक इकाई को रूप देने के लिए धन की आवश्यकता रहती है, देश की सभी योजनाएँ धन के द्वारा पूर्ण होती हैं। निर्धन देशों में साम्यवाद और धनवान देशों में पूँजीवाद शीघ्र फैलते हैं। मार्क्स तो वर्ग संघर्ष को राजनीतिक संघर्ष बताता है तथा राज्य की उत्पत्ति को आर्थिक कारक मानता है। उत्पादन के प्राकृतिक या भौतिक साधनों पर स्वामित्व पाने के लिए, दो वर्गों के संघर्ष को समाप्त करके राज्य की शक्ति का विकास हुआ है। मार्क्स कहता है कि आर्थिक कारक के समाप्त होते ही राज्य स्वयं समाप्त हो जायेगा अत: आर्थिक ढाँचा ही समाज का वास्तविक ढाँचा है। अन्य सभी सामाजिक ढाँचे अथवा अधिसंरचनाएँ इस पर ही आधारित हैं। आर्थिक रूप से शक्तिशाली व्यक्ति ही राजनीतिक रूप से भी शक्तिशाली हो जाते हैं क्योंकि राजनीतिक क्षेत्र में भी वे अपनी आर्थिक सम्पन्नता का लाभ उठाते हैं। इस प्रकार, हम कह सकते हैं कि आर्थिक परिस्थितियों का राजनीतिक परिस्थितियों पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है तथा वे सामाजिक परिवर्तन के प्रमुख कारक हैं।

(4) आर्थिक परिस्थितियाँ एवं मानव व्यवहार (Economic conditions and man's behaviour)—आर्थिक परिस्थितियों का मानव व्यवहार से भी गहरा सम्बन्ध है। मनुष्य कैसा व्यवहार करता है, यह बहुत कुछ उसकी आर्थिक परिस्थितियों पर निर्भर करता है। हमारे उठने-बैठने के तरीके, खान-पान,

Scanned with CamScanner

रहन-सहन, शिष्टाचार एवं तौर-तरीके सभी हमारी आर्थिक स्थिति की ओर संकेत करते हैं। इसी धारणा के आधार पर वेब्लन एक वर्ग को दूसरों से अलग करता है। एक वर्ग की आर्थिक स्थिति दूसरे वर्ग से भिन्न होने के कारण सोचने-विचारने का ढंग, आदत एवं व्यवहार करने के तरीकों में भी भिन्नता है। भारत में परिवार-नियोजन कार्यक्रम इसलिए अपनाया गया है कि इतनी तीव्रगति से बढ़ती हुई जनसंख्या को भोजन देने में हम आर्थिक रूप से अपने को असमर्थ पा रहे हैं। इसलिए हमने छोटे आकार के परिवारों को अपनाया है। आर्थिक परिस्थितियाँ विवाह की संस्था को प्रभावित करती हैं।

वास्तव में, सामाजिक सम्बन्धों का निर्धारण सामाजिक अन्तर्क्रिया द्वारा होता है। वह अन्तर्क्रिया स्वयं ही हमारे आर्थिक ढाँचे की उत्पत्ति है। इस प्रकार, मानव व्यवहार आर्थिक क्रियाओं पर केन्द्रित है। निर्धनता एवं आर्थिक संकट के समय अपराध अधिक होते हैं, प्राकृतिक प्रकोपों उदाहरणार्थ, बाढ़, अतिवृष्टि, ओलावृष्टि आदि के कारण भी आर्थिक रूप से विपन्न व्यक्ति अधिक अपराध करते हैं। अत: आर्थिक परिस्थितियों एवं मानव व्यवहार में सीधा सम्बन्ध है तथा इन्हीं परिस्थितियों को सामाजिक परिवर्तन के आर्थिक कारक की संज्ञा दी जाती है।

(5) आर्थिक परिस्थितियाँ एवं जनसंख्या (Economic conditions and population)—आर्थिक परिस्थितियों का जनसंख्या से भी गहरा सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध को हम निम्न प्रकार से देख सकते हैं—

(i) जनसंख्या की शारीरिक एवं मानसिक विशेषताएँ (Physical and mental characteristics of population)—जनसंख्या के शारीरिक एवं मानसिक लक्षणों का आर्थिक परिस्थितियों से गहरा सम्बन्ध है। सामान्यत: समाज में धनी वर्ग के व्यक्तियों का स्वास्थ्य निर्धन वर्ग के व्यक्तियों से अच्छा होता है। लोम्ब्रोसो का कथन है कि धनी वर्ग के सदस्य अधिक कार्यकुशल और क्षमता वाले होते हैं। यही निष्कर्ष उन अनेक विद्वानों का था जिन्होंने मनुष्यों की मानसिक एवं शारीरिक विशेषताओं एवं उनकी आर्थिक परिस्थितियों का अध्ययन किया था।

(ii) जनसंख्या की जन्म एवं मृत्यु-दर (Birth and death rate of population)—आर्थिक परिस्थितियों का सम्बन्ध जनसंख्या की जन्म एवं मृत्यु-दर से भी है। जनसंख्या को बढ़ाने में निम्न वर्ग एवं जाति के लोगों का बहुमत है, क्योंकि वे समझते हैं कि परिवार के सभी सदस्य शीघ्र कमाने लगेंगे। निम्न वर्ग के लोगों में उच्च वर्ग के लोगों की अपेक्षा जन्म एवं मृत्यु-दर ही की दर अधिक पाई जाती है। इसी से जनसंख्या का आकार बढ़ता है। निम्नवर्गीय जनसंख्या, संख्या से अधिक किन्तु गुणात्मक रूप से हीन होती है।

(iii) आर्थिक परिस्थितियाँ एवं जनसंख्या की गतिशीलता (Economic conditions and migration of population)—जनसंख्या का स्थायित्व भी एक सीमा तक हमारी आर्थिक परिस्थितियों पर निर्भर करता है। जिस स्थान की आर्थिक परिस्थितियाँ खराब हो जाती हैं वहाँ से जनसंख्या दूसरे स्थान को स्थानान्तरित हो जाती है। बंगाल में अकाल पड़ने पर एवं बिहार तथा असम में बाढ़ आने पर जनसंख्या भारत के अन्य भागों में भटकती दिखाई देती है।

सामाजिक परिवर्तन के आर्थिक कारकों के बारे में मार्क्स के विचार
(Marx's Views about Economic Factors of Social Change)

कार्ल मार्क्स के समाज एवं सामाजिक परिवर्तन सम्बन्धी विचारों की संक्षिप्त रूपरेखा हमें उनके ग्रन्थ ***'राजनीतिक अर्थशास्त्र की आलोचना में योगदान'*** (*A Contribution to the Critique of Political Economy*) की प्रस्तावना में मिलती है। मार्क्स के विचार उनके इस विश्वास में निहित हैं कि न तो कानूनी सम्बन्धों की और न ही राजनीतिक ढाँचों को अपने आप में या मानव मस्तिष्क के तथाकथित सामान्य विकास के आधार पर समझा जा सकता है, बल्कि इसके विपरीत वे जीवन की भौतिक परिस्थितियों में उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार, मार्क्स ने आर्थिक आधार पर सामाजिक परिवर्तन की व्याख्या करने का प्रयास किया है। इसलिए उनके सिद्धान्त को 'इतिहास की आर्थिक व्याख्या' अथवा 'इतिहास के भौतिकवादी निर्वचन' भी कहते हैं।

मार्क्स के सामाजिक परिवर्तन से सम्बन्धित मूल विचारों की व्याख्या निम्नलिखित नौ सूत्रों के रूप में की जा सकती है—

(1) अपने अस्तित्व के सामाजिक उत्पादन में मनुष्य अपरिहार्य रूप से ऐसे निश्चित सम्बन्धों में बँधते हैं जो उनकी इच्छाओं से स्वतन्त्र होते हैं अर्थात् वे उत्पादन की अपनी भौतिक शक्तियों के विकास की निश्चित मंजिल के अनुरूप उत्पादन के सम्बन्धों में बँधते हैं।

Scanned with CamScanner

(2) उत्पादन के इन सम्बन्धों का पूर्ण समाहार ही समाज का आर्थिक ढाँचा है जो समाज का आधार होता है, इसी पर कानूनी और राजनीतिक ऊपरी ढाँचा खड़ा होता है तथा सामाजिक चेतना के विशिष्ट स्वरूप उसी के अनुरूप होते हैं।

(3) यह मनुष्य की चेतना नहीं होती जो उनके अस्तित्व को निर्धारित करती है, वरन् यह उनका सामाजिक अस्तित्व होता है जो उनकी चेतना को निर्धारित करता है। मार्क्स के अनुसार मनुष्य की समस्त विचारधाराएँ उनके अस्तित्व की भौतिक दशाओं से निर्धारित होती हैं। विचार भौतिक परिस्थितियों का प्रतिबिम्ब-मात्र है।

(4) उत्पादन के मौजूदा सम्बन्ध, अपने विकास के एक निश्चित चरण में पहुँचकर, उत्पादक शक्तियों के विकास के स्वरूप न रहकर उनके लिए बेड़ियाँ बन जाती हैं और तब सामाजिक क्रान्ति का युग शुरू होता है।

(5) आर्थिक ढाँचे में परिवर्तन से देर-सवेर समाज के समस्त बृहताकार ऊपरी ढाँचे में भी रूपान्तरण हो जाता है। ऊपरी ढाँचे में समाज की वैधानिक, राजनीतिक, धार्मिक, कलात्मक अथवा दार्शनिक संस्थाएँ सम्मिलित होती हैं।

(6) ऐसे सामाजिक परिवर्तनों का अध्ययन करने के लिए यह आवश्यक है कि आर्थिक मूलाधार के भौतिक रूपान्तरण और ढाँचे के रूपान्तरण के बीच भेद किया जाए। सामाजिक परिवर्तन भौतिक जीवन के अन्तर-विरोधों द्वारा ही स्पष्ट किया जा सकता है। यहाँ भौतिक जीवन के अन्तर-विरोध से आशय उत्पादन का सामाजिक शक्तियों और उत्पादन के सम्बन्धों के बीच उत्पन्न टकराव से ही है।

(7) प्रत्येक समाज व्यवस्था की संरचना में ही सामाजिक परिवर्तन का स्रोत निहित होता है। किसी भी समाज व्यवस्था का खात्मा तब तक नहीं होता जब तक उसके अन्दर की सभी उत्पादन शक्तियाँ, जिनके लिए वह पर्याप्त है; विकसित नहीं हो जातीं और उत्पादन के नए श्रेष्ठतर सम्बन्ध तब तक पुराने सम्बन्धों की जगह नहीं लेते जब तक पुराने समाज के ढाँचे में उनके अस्तित्व की भौतिक परिस्थितियाँ परिपक्व नहीं हो जातीं।

(8) मार्क्स ने अपने उपर्युक्त आर्थिक नियम को मानव समाज के इतिहास के निर्वचन पर भी लागू किया है। यह उसका 'ऐतिहासिक भौतिकवाद' कहलाता है। मार्क्स के अनुसार मानव के समस्त इतिहास को, "व्यापक रूपरेखा के तौर पर, उत्पादन को एशियाई, सामन्ती और आधुनिक पूँजीवादी युगों के रूप में रखा जा सकता है।"

(9) उत्पादन की पूँजीवादी पद्धति उत्पादन की सामाजिक प्रक्रिया का अन्तिम रूप है। पूँजीवादी व्यवस्था स्वयं ही ऐसा विरोध उत्पन्न कर रही है कि क्रान्ति द्वारा उसका विनाश निश्चित है। इस व्यवस्था में धन का संकेन्द्रण कुछ ही परिवारों में होता चला जाता है। श्रमिकों की संख्या बढ़ती चली जाती है। मजदूरी के लिए उनकी पारस्परिक प्रतिस्पर्द्धा मजदूरी को और घटाती चली जाती है। मजदूरों में वर्ग चेतना जागती है और वे क्रान्ति के लिए प्रेरित होते हैं। परन्तु वह क्रान्ति शोषण के विरुद्ध अन्तिम क्रान्ति होगी क्योंकि सर्वहारा मजदूर अपने हाथ में राज-सत्ता लेकर निजी सम्पत्ति के अधिकार को सदा-सदा के लिए खत्म कर देंगे।

मार्क्स के उपर्युक्त मूल आर्थिक विचारों में हमें दो महत्त्वपूर्ण बातें स्पष्ट नहीं दिखाई देतीं जिन्हें उन्होंने बाद में **'कम्युनिस्ट पार्टी के घोषणापत्र'** में लिखा। वे हैं—**एक**, सामाजिक वर्गों का स्पष्ट विभाजन एवं **द्वितीय**, वर्ग संघर्ष का सिद्धान्त। **'कम्युनिस्ट पार्टी के घोषणापत्र'** में उन्होंने बताया है कि, "अभी तक आविर्भूत समाज का इतिहास वर्ग संघर्षों का इतिहास रहा है।"

यद्यपि सामाजिक परिवर्तन की आर्थिक कारकों के आधार पर मार्क्सवादी व्याख्या वैज्ञानिक है, तथापि इसकी अनेक आधारों पर आलोचना की जाती है। मार्क्स का आर्थिक कारकों को सामाजिक परिवर्तन हेतु निर्णायक मानना उचित नहीं है क्योंकि इसके अनेक अन्य कारक भी हैं। इतना ही नहीं, सामाजिक परिवर्तन न तो सदैव वर्ग संघर्ष पर आधारित होता है और न ही समाज में केवल पूँजीपति एवं सर्वहारा वर्ग ही विद्यमान होते हैं। मार्क्सवादी व्याख्या समाज के अन्य वर्गों की उपेक्षा करती है। पूँजीवाद की समाप्ति और वर्गविहीन समाज की स्थापना की बात मार्क्स की कल्पना है जो वास्तविक नहीं हो सकती। रूस एवं चीन में पूँजीवादी व्यवस्था समाप्त होने पर भी वहाँ वर्ग भेद विद्यमान है और राज्य भी है। यद्यपि मार्क्स की आर्थिक कारकों के आधार पर सामाजिक परिवर्तन की व्याख्या में कमियाँ हैं, तथापि इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि आर्थिक क्रियाएँ मानव की मुख्य क्रियाएँ हैं और उनमें आने वाला कोई भी परिवर्तन, समाज के अन्य पहलुओं में परिवर्तन लाता है।

Scanned with CamScanner